

## शिक्षा सिर्फ 'कुछ' के लिए

□ अनिल सद्गोपाल

यह लेख लगभग एक वर्ष पुराना है। 10 नवम्बर 2003 को दिल्ली में 'शिक्षा सबके लिए' सम्मेलन आयोजित हुआ था। तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के अभिभाषण और शिक्षा के प्रति सरकार के दृष्टिकोण पर एक टिप्पणी है यह लेख। एक वर्ष बाद भी हम इसे ज्यों का त्यों छाप रहे हैं क्योंकि लेख की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही जितनी एक वर्ष पहले थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने सभी बच्चों को शिक्षित करने के लिए अतिरिक्त विदेशी धन के लिए अपील की। उस देश के लिए जो कि विदेशी मुद्रा कोष व विश्व बैंक द्वारा निर्देशित संरचनात्मक समायोजन की नीतियों के जंजाल में फंसा है, बाह्य एजेंसियों पर निर्भरता का अर्थ होगा शिक्षा नीतियों के निर्माण में राष्ट्रीय सार्वभौमिकता को नजरअंदाज करना। अनिल सद्गोपाल दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षाशास्त्र के प्रोफेसर हैं तथा नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय में वरिष्ठ शोधकर्ता हैं। वह जन विज्ञान आंदोलन में एक कार्यकर्ता हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी ने 10 नवम्बर को सभी के लिए शिक्षा से संबंधित एक उच्च स्तरीय समिति की बैठक का उद्घाटन करते हुए भारत में प्राथमिक शिक्षा के लिए धन की कमी पर गहरी चिंता व्यक्त की। अतिरिक्त बाहरी सहायता के महत्व को मजबूती से सामने रखते हुए उन्होंने विश्व बैंक समेत द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहायता एजेंसियों को वर्ष 2000 में डेकार, सेनेगल में उनके द्वारा की गई इस प्रतिज्ञा की याद दिलाई कि "मूलभूत शिक्षा के प्रति गंभीर रूप से प्रतिबद्ध किसी भी देश को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए जाने वाले प्रयासों व संसाधनों की कमी की वजह से व्यर्थ नहीं जाने दिया जाएगा।" उन्होंने दुःख भी व्यक्त किया कि "अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा 2002 में आरंभ किया गया फास्ट ट्रेक कार्यक्रम न तो कभी अपने नाम सा तीव्र था और न ही पर्याप्त रहा है।" मानो, वह यह कहना चाह रहे थे कि भारत अपने बच्चों को तभी शिक्षित कर पाएगा जब बाह्य सहायता एजेंसियां अतिरिक्त धन उपलब्ध करायेंगी। क्या इसका मतलब यह लगाया जाये कि प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने संबंधी हालिया संवैधानिक संशोधन, सहायता एजेंसियों की दया पर निर्भर है? इस निर्भरता की प्रवृत्ति का राष्ट्रीय स्वायत्तता पर क्या असर पड़ेगा?

इस सवाल का जवाब तभी मिल सकता है जब हम राष्ट्र निर्माण के इस महत कार्य के लिए धन की कमी के वितंडे के तार्किक आधार का परीक्षण करें। भारत सरकार ने सभी बच्चों को आठ वर्ष (6 से 14 वर्ष तक आयु वर्ग) की मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के लिए अपेक्षित धन के आकलन के लिए 1999 में तापस

मजूमदार समिति का गठन किया। (डेकार सम्मेलन में प्रस्तुत प्रारूप में इस लक्ष्य को घटा कर 5 वर्ष (6 से 11 वर्ष तक आयुवर्ग) की प्राथमिक शिक्षा कर दिया गया था) समिति ने आकलन किया कि स्कूल-से-बाहर सभी बच्चों को स्कूल व्यवस्था (समानान्तर स्ट्रीम नहीं) में लाने और उन्हें प्राथमिक स्तर पूरा करने में सक्षम बनाने के लिए दस वर्ष की अवधि के दौरान 1,37,600 करोड़ रुपये का अतिरिक्त निवेश करना होगा।

यह प्रतिवर्ष 14000 करोड़ रुपये का औसत निवेश बैठता है, जो कि 1999 में सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.78 प्रतिशत था; दूसरे शब्दों में, भारत द्वारा तब कमाए जाने वाले 100 रुपये में मात्र 78 पैसे। 2002-03 में यह राशि और भी कम होकर, सकल घरेलू निवेश का 0.63 प्रतिशत हो गई। तथापि, संविधान (93 वां) संशोधन अधिनियम, 2001 के वित्तीय ज्ञापन के अनुसार 6 से 14 वर्ष के आयु समूह के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के लिए 98,000 करोड़ रुपये की राशि 10 वर्ष की अवधि के लिए आवश्यक होगी। यह औसतन 9800 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष (2002-03 के जीडीपी का 0.44 प्रतिशत) बैठता है, जो तपस मजूमदार समिति के आकलन से 30 प्रतिशत कम है।

क्या सरकार यह कह रही है कि वह राष्ट्रीय आय के 100 रुपये में से 44 पैसे की अतिरिक्त राशि भी भारत के सभी बच्चों के इस मौलिक अधिकार को सुनिश्चित करने के नाम पर खर्च नहीं कर सकती है? फिर भी, 'सभी के लिए शिक्षा' बैठक में मानव संसाधन विकास मंत्री ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि वह 'डाकर

लक्ष्यों' के प्रति गंभीरतापूर्वक समर्पित है और इसके लिए उन्होंने संविधान संशोधन का प्रमाणस्वरूप लगातार उद्घरण दिया।

संविधान संशोधन अधिनियम में वित्तीय आवश्यकता का जो कम करके आकलन किया गया उसका कारण यह है कि इस आकलन में अनेक सर्वमान्य मानकों में, जो तपस मजूमदार समिति द्वारा सुझाए गए थे, घालमेल किया गया। उदाहरण के लिए, शिक्षक-छात्र अनुपात 1:30 से घटाकर 1:40 कर दिया गया; सभी प्राथमिक विद्यालयों के लिए तीन शिक्षकों और तीन कक्षाओं के आपरेशन ब्लैक बोर्ड मानक को घटाकर दो शिक्षक और दो कक्षा कर दिया गया; एक अपंग बच्चे को विशेष क्लासरूम में शिक्षित करने के प्रतिवर्ष 3,000 रुपये से घटाकर 1,200 रुपए कर दिया गया। इस प्रकार शैक्षणिक रूप से काफी सबल मानकों को घटाने के बारे में कोई दकियानूसी सफाई भी सरकार की ओर से नहीं दी गई, फिर भी सरकार ने 'सबके लिए शिक्षा', बैठक में गुणवत्तायुक्त शिक्षा के बारे में अपना राग अलापना जारी रखा।

तथापि, मानकों में जो कमी की गई, उसका असर गुणात्मक कम और अवधारणात्मक (नैतिक और मूल्यगत भी) ज्यादा था। सरकार ने निर्णय लिया कि वह शैक्षणिक रूप से वंचित बच्चों के लिए, जिनमें दो तिहाई लड़कियां हैं, नियमित औपचारिक स्कूलों के बजाय निम्न गुणवत्तायुक्त, निम्न बजट समानान्तर धारा विकसित करेगी। यह नीतिगत पहल स्पष्ट रूप से अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक निधि (आई.एम.एफ.) व विश्व बैंक द्वारा आरंभ किये गये संरचनागत समायोजन कार्यक्रम का परिणाम है, जिसके तहत अतिरिक्त ऋण या सहायता प्रदान करने की शर्त के रूप में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक कल्याण क्षेत्रों के व्ययों में भारी कटौती की जाती है।

समान्तर स्ट्रीमों में वैकल्पिक विद्यालय, शिक्षा गारंटी स्कीम (ईजीएस) केन्द्र और विश्व बैंक प्रायोजित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के कैनवास के अन्तर्गत 1990 के दौरान डिजाइन किये गये तथाकथित 'नवाचार' मल्टी ग्रेड टीचिंग सम्मिलित हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 6 से 8) को खास तौर पर भुला दिया गया है, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1980 के

विरुद्ध है। यह संभवतः उन बाह्य सहायता एजेंसियों को खुश करने के लिए किया गया है। जिनकी प्रतिबद्धता डंकार फ्रेमवर्क के अनुसार मात्र पांच वर्षों तक प्राथमिक शिक्षा के प्रति है। इसके अतिरिक्त, नियमित शिक्षक की जगह अनियमित शिक्षक (पैरा-टीचर) को लाया गया जो कि कम शिक्षित, कम प्रशिक्षित और कम वेतन पर काम करने वाला स्थानीय युवक है, जिसे लघु-अवधि संविदा के आधार पर नियुक्त किया जाता है।

सरकार इस बात को लेकर कर्तई चिन्तित नहीं है कि उसकी यह नीतिगत पहल निर्धनों के प्रति भेदभाव को मजबूत करेगी, जिनमें अधिकांशतः दलित, आदिवासी, धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यक लोग होते हैं और इनमें से प्रत्येक का दो तिहाई लड़कियां होती है। अधिकांश अपंग बच्चे भी इसी खाते में आ जाते हैं।

इस नीति की व्यापक सार्वजनिक आलोचना और संविधान में समानता के सिद्धांत के बावजूद इस नीति को बेशर्मीपूर्वक आगे बढ़ाया गया। सरकार की यह जो 'कुछ नहीं से थोड़ा भला' की नीति है, वह पिछले 57 वर्षों में शिक्षा के पतन पर प्रश्न चिन्ह लगाने की जगह इसे न्यायसंगत ही ठहराती है। समानान्तर स्ट्रीम की अवधारणा का पहले-पहल 1980 की नीति में निर्धनों

के लिए "विशेषकर बाल श्रमिकों के लिए" अनौपचारिक शिक्षा के रूप में प्रस्तुत और लागू किया गया था।

इसे मुख्य नीतिगत दोष समझा जाता है, क्योंकि इसे 1980 के दशक के नीति निर्माताओं द्वारा मुख्यधारा स्कूल सिस्टम को निर्धनों विशेषकर लड़कियों और अपंग बच्चों के पक्ष में रूपान्तरित करने पर राजनीतिक ध्यान नहीं देने के तर्क के रूप में इस्तेमाल किया गया। हालांकि, इस नीति (1986) की प्रतिबद्धता इस बात के प्रति थी कि कोठारी समिति, (1964-66) की संस्तुतियों के अनुसार रिहायशी इलाकों के नजदीक स्कूलों को बढ़ावा देते हुए एक 'समान स्कूल व्यवस्था' की स्थापना की जाए, फिर भी अनौपचारिक शिक्षा समानान्तर स्ट्रीम का प्रमुख नीतिगत घटक हो गया। इस तरह समान स्कूल व्यवस्था की अवधारणा और समानता के संवैधानिक सिद्धांत को नजरअंदाज कर दिया गया। फलतः अच्छी गुणवत्तायुक्त शिक्षा

**बाजार का तर्क है कि जन-सामान्य के लिए साक्षरता भर पर्याप्त है ताकि वे उत्पाद के लेबल और विज्ञापनों को पढ़ सकें।**

**आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, वैज्ञानिक प्रवृत्ति, व्याख्यात्मक विश्लेषण क्षमता, इतिहास या दर्शन की समझ, सौन्दर्याभिरुचि और इसी प्रकार के अन्य शैक्षणिक क्षमताओं को एक छोटे से उच्च वर्ग तक सीमित रखने की आवश्यकता है।**

**अम्बानी-बिड़ला रिपोर्ट (2000) जो प्रधानमंत्री की व्यापार और उद्योग परिषद को सौंपी गई, वह भी भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में बाजार फ्रेमवर्क को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनायी गई थी। बड़ी और व्यापक प्रवृत्ति है।**

एक ऐसी वस्तु हो गई जिसे उच्च वर्ग ही पा सकता था।

प्रधानमंत्री ने इ.एफ.ए. बैठक में बाजार द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता को निर्धारित करने की प्रक्रिया पर चिंता व्यक्त की, लेकिन इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि यह नीति इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही बनाई गई।

बहुप्रचारित वयस्क साक्षरता कार्यक्रम इस बात का उदाहरण है, कि किस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के मूल मुद्दे से ध्यान हटा लिया गया है। साक्षरता कार्यक्रम इसका इंतजार करता प्रतीत होता है कि कब 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे, जो स्कूल नहीं जा पाए, वयस्क हों और कार्यक्रम के आयुवर्ग में (15-35 वर्ष) में शामिल हों और तब साक्षरता कार्यक्रम उन पर ध्यान दे। इस नीति के अनुसार, साक्षरता व्यापार 2015 के बाद भी जारी रहेगा।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि साक्षरता पर जरूरत से अधिक जोर देना और इसे शिक्षा का लगभग पर्याय बना देना विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेंसियों के साक्षरता षड्यंत्र का हिस्सा है। जौमतीन घोषणा (1990) जो ई. एफ. ए. संबंधी प्रथम विश्व सम्मेलन में जारी की गई और डॅकार फ्रेमवर्क (2000) में इसको आगे बढ़ाया जाना, इस बात की पुष्टि करता है कि बाजार की शक्तियां वैश्विक शिक्षा परिदृश्य में साक्षरता के मुद्दे को आगे बढ़ाने के लिए बहुत काम कर रही हैं। बाजार का तर्क है कि जन-सामान्य के लिए साक्षरता भर पर्याप्त है, ताकि वे उत्पाद के लेबल और विज्ञापनों को पढ़ सकें। और फैक्ट्री-मजदूरों के लिए इससे कुछ बेहतर स्थिति चाहिए ताकि वे उत्पादन निर्देशों को समझ सकें और इंटरनेट वगैरह का इस्तेमाल कर पाएं। आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, वैज्ञानिक प्रवृत्ति, व्याख्यात्मक विश्लेषण क्षमता, इतिहास या दर्शन की समझ, सौन्दर्याभिरुचि और इसी प्रकार के अन्य शैक्षणिक क्षमताओं को एक छोटे से उच्च वर्ग तक सीमित रखने की आवश्यकता है। साक्षरता पैराडाइम और बाजार की शक्तियों की यही मंशा है। अम्बानी-बिड़ला रिपोर्ट (2000) जो प्रधानमंत्री की व्यापार और उद्योग परिषद को सौंपी गई, वह भी भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में बाजार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनायी गई थी।

स्कूलों की गुणवत्ता की मौजूदा गिरावट और निजी स्कूली व्यवस्था का कारण भी, ऐतिहासिक और शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण से, इसी त्रुटिपूर्ण नीति में खोजा जा सकता है। अगर सरकार सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य के प्रति तनिक भी प्रतिबद्ध होती तो वह इस नीति की असफलता की पड़ताल करती और भावी नीति बनाते समय इससे सबक लेती।

यह महत्वपूर्ण है कि 'महिला समानता के लिए शिक्षा' के प्रति जौमतीन-डॅकार फ्रेमवर्क की तुलना में 1986 की शिक्षा नीति में अधिक स्पष्ट प्रतिबद्धता नजर आती है। इसमें कहा गया है कि अतीत में उपजी असमानताओं को मिटाने के क्रम में "शिक्षा को महिलाओं की परिस्थिति में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए कारक के रूप में उपयोग में लाया जाएगा।" इसमें कहा गया है कि "महिलाओं को सोचे-समझे तरीके से फायदा दिया जाएगा" और यह कि शिक्षा व्यवस्था उनके सशक्तिकरण में "सकारात्मक हस्तक्षेप की भूमिका निभायेगी" और यह "विश्वास तथा सामाजिक इंजीनियरिंग का एक कार्य होगा।" इस स्पष्टता का श्रेय पूरी तरह से भारत में महिला आंदोलन को जाना चाहिए।

तथापि इस नीति के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने वाली एकमात्र योजना महिला सामाख्या है। इसका लक्ष्य महिलाओं में आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को बढ़ावा देना; समाज राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी को मान्यता देते हुए उनकी सकारात्मक छवि बनाना; आलोचनात्मक रूप से सोचने की उनकी क्षमता बढ़ाना; शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य (खास तौर पर जनन संबंधी स्वास्थ्य) के क्षेत्रों में पर्याप्त सूचनाओं के आधार पर चुनाव कर पाने में सक्षम बनाना और विकास प्रक्रियाओं में समान भागीदारी सुनिश्चित करना था। लेकिन 1990 के पूरे दशक में यह कार्यक्रम हाशिये पर ही रहा। केन्द्रीय बजट में प्राथमिक शिक्षा के लिए उपलब्ध कराए गए प्रत्येक 100 रुपये में से इस कार्यक्रम को मात्र 25 पैसे उपलब्ध कराए गए। कालांतर में, इस छोटे से कार्यक्रम ने अपनी मूल दिशा भी खो दी।

जौमतीन-डॅकार फ्रेमवर्क पितृ सत्ता का मुद्दे के रूप में कोई उल्लेख तक नहीं करता और लड़कियों की शिक्षा को अनिवार्य रूप से स्कूल रजिस्ट्रों में उनके नामांकन तक और साक्षरता की कुशलता तक सीमित कर देता है। ठीक यही हुआ जब विश्व बैंक प्रायोजित डीपीईपी ने महिला सामाख्या को अपनाया। संगठित महिला समूहों के सामूहिक चिंतन और सामाजिक सांस्कृतिक क्रियाकलापों को दरकिनार कर दिया गया। यह बालिकाओं का नामांकन मात्र का कार्यक्रम बन कर रह गया। स्कूलों में लड़कियों की भागीदारी, पाठ्य सामग्री को लिंग समानता की दृष्टि से संवेदनशील बनाने और शिक्षक शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों तथा अन्य संपूर्णतावादी शैक्षणिक उद्देश्यों को नजरअंदाज कर दिया गया।

दुर्भाग्यवश, यूनेस्को द्वारा जारी ई.एफ.ए. ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट 2003-2004 में लिंग असमानता की धारणा (लड़कियों और लड़कों के नामांकन का अनुपात) इस भ्रम को मजबूती प्रदान

करती है। यह एक अलग विषय है कि यूनेस्को रिपोर्ट के अनुसार भारत इस कमतर उद्देश्य को 2015 तक भी प्राप्त करने में असफल रहेगा। विश्व बैंक ने महिला शिक्षा के लक्ष्य को कम करके उनके साक्षरता स्तर और उत्पादकता मात्र (उनकी शिक्षा और सशक्तिकरण की जगह) तक सीमित कर दिया और उन्हें जनन नियंत्रण, स्वास्थ्य और पोषण के प्रेषक मात्र के रूप में बदल दिया। डंकार फ्रेमवर्क ने 'जीवन की कुशलताओं' की अस्पष्ट धारणा को भी शामिल किया है जो कि सामाजिक जोड़-तोड़ और किशोरों, खासतौर पर लड़कियों की मानसिकता पर बाजार के नियंत्रण की एक पद्धति है। दुर्भाग्यवश भारत ने महिला शिक्षा संबंधी अपनी प्रगतिवादी नीति को उस अन्तर्राष्ट्रीय फ्रेमवर्क के लिए तज दिया, जो महिला के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकारों के बजाय बाजार की शक्तियों से निर्देशित होती थी।

सभी स्कूलों में आरंभिक बाल सुरक्षा और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) को जोड़ने की नीतिगत सिफारिशों को छोड़ दिया गया है। एकीकृत बाल विकास सेवाएं (आई. सी. डी. एस.) जो ई. सी. सी. ई. का एक कमजोर स्थानापन्न हैं, शून्य से छः वर्ष के कुल बच्चों में से बमुश्किल 20 प्रतिशत बच्चों तक पहुंच पाता है। इस स्थिति में बदलाव की संभावनाएं भी कम हैं, क्योंकि 86 वें संविधान संशोधन में जो शिक्षा के मौलिक अधिकार की बात करता है, शून्य से छः वर्ष के 16 करोड़ बच्चे शामिल नहीं हैं। साथ ही धारा 45 के संशोधन में भी छः वर्ष से कम आयु के बच्चों को मुफ्त आरंभिक बाल सुरक्षा और शिक्षा की संवैधानिक जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया गया।

यह संशोधन छः से चौदह वर्ष की बालिकाओं, खास तौर पर वंचित वर्ग की बालिकाओं को प्रकारान्तर से शिक्षा के अधिकार से वंचित करता है, क्योंकि इसके अनुसार इन बालिकाओं को अपने भाई-बहनों की देख-रेख करने से हटाया नहीं जा सकता। मानव संसाधन विकास मंत्री ने 28 नवम्बर 2001 को संसद में एक चौकाऊ बयान दिया था, जिसमें ई.सी.सी.ई. संबंधित सरकारी जिम्मेदारी को एन.जी.ओ. और उद्यम क्षेत्र में देने की बात थी। उनके इस बयान को विश्व बैंक की उस नीति के साथ पढ़ा जा सकता है, जिसके तहत वह सामाजिक सेवाओं को निजी क्षेत्रों में सौंपने की बात कहता है।

यहां तक कि छः से चौदह आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार कुछ शर्तों के साथ दिया गया। नये अनुच्छेद 21 (1) के अनुसार 'मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा इस प्रकार उपलब्ध कराई जायेगी जैसा कि राज्य सरकार कानून के द्वारा निर्धारित करेगी'। इस शर्त को निम्न गुणवत्ता युक्त कम बजट वाली शिक्षा की समानान्तर स्ट्रीम की व्यवस्था को वैधता प्रदान करने के लिए लाया गया है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में भेद-भाव पूर्ण मल्टीपल

ट्रैक शिक्षा, सर्व शिक्षा अभियान का मूल आधार हो गयी है। ('बैक टू स्कूल कैम्प' मल्टीपल ट्रैक सिस्टम का नवीनतम संस्करण है।)

जल्द ही पैरा शिक्षक को बदलकर उनकी जगह पोस्टमैन आ जाएंगे, क्योंकि सरकार से छः से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम आरंभ करने की योजना बनायी है। इसका अर्थ है कि बालिकाओं को स्कूल के उस उन्मुक्त वातावरण से भी वंचित कर दिया जायेगा जो पुरुष-प्रधान परम्पराओं से बंधे उनके घरों से तुलनात्मक रूप से अधिक मुक्त है। छः से चौदह वर्ष आयु समूह के बच्चों के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम की सिफारिश राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) ने अपने स्कूल शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क, 2000 में की है। यह 1986 की नीति के विरुद्ध है, जो माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तरों से आगे ही मुक्त स्कूल की बात करता है। एन.सी.ई.आर.टी. ने इस बात की पुष्टि के लिए रती भर भी शोध नहीं किया, कि इस नाजुक आयु समूह के बच्चों के लिए मुक्त स्कूल प्रणाली कहां तक न्यायसंगत है।

उससे भी बुरी स्थिति आने वाली है। बच्चों के लिए मुक्त और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2003 का परिशिष्ट अ (इस अधिनियम को संसद के शीतकालीन अधिवेशन में लाये जाने की संभावना है) ई जी एस केन्द्रों और वैकल्पिक विद्यालयों में कम शिक्षित और अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित पैरा-शिक्षकों का प्रावधान करता है। आश्चर्यजनक रूप से यह परिशिष्ट उस तथाकथित मुक्त विद्यालय प्रणाली को वैधता प्रदान करता है, जिसमें डाकिया (महिला-डाकिया नहीं) उन छात्राओं को पाठ्यसामग्री उपलब्ध करायेगा जो अपने छोटे भाई-बहनों की देख-रेख और घरेलू कामों में व्यस्त रहती हैं, और इस प्रकार यह लिंग आधारित भेद-भाव को मजबूती प्रदान करेगा। अपंग बच्चों के लिए भी पत्राचार पाठ्यक्रम होंगे, जिससे उनके लिए विशिष्ट कक्षाएं 'अनावश्यक' हो जाएंगी। इससे सर्व शिक्षा अभियान में अपंग बच्चों के लिए विशेष क्लासरूम दिये जाने के बढ़-चढ़ कर किये जाने वाले दावे की पोल खुलती है। इस प्रकार इस विधेयक का उद्देश्य 86 वें संशोधन द्वारा आरंभ की गई उस प्रक्रिया को पूरा करना है, जिसके तहत आइ. एम. एफ. और विश्व बैंक के प्राथमिक शिक्षा में संरचनागत समायोजन संबंधी आदेशों को लागू करना था।

जहाँ तक वित्तपोषण की बात है, यह एक मिथक है कि बाह्य सहायता सहायक हुई है। नीतियों को बदलने और उनको विकृत करने के अतिरिक्त बाह्य सहायता ने उस राजनीतिक इच्छा-शक्ति पर भी बुरा प्रभाव डाला है जिसके द्वारा सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लिए सार्वजनिक संसाधन आकर्षित करने के लिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण किया जा सकता था।

1989-90 तक, जीडीपी का करीब 4 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया गया, जिसमें आधे से कुछ कम प्राथमिक शिक्षा पर खर्च किया गया। विडंबना है कि 1990 के दशक में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बाह्य सहायता के घुसपैठ के साथ शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा समेत) में निवेश बहुत तेजी से घटते हुए 1997-98 में जीडीपी का 3.49 प्रतिशत हो गया, जो कि 1986 की नीति आने के ठीक पहले 1985-86 के स्तर के समान है। स्पष्ट रूप से, बाह्य सहायता के प्रवेश से प्राथमिक शिक्षा के लिए संसाधन आकर्षित करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति में हास हुआ है।

पिछले दो से तीन वर्षों के दौरान कुछ सुधार हुआ है, पर 2001-02 से पुनः हास की प्रवृत्ति है, जबकि बाह्य सहायता का स्तर 1997-98 की तुलना में लगभग दो गुना हो गया है।

जमीनी स्तर के जनांदोलन के अलावा इस बात की कोई

संभावना नहीं है कि सरकार अपने आप को बाह्य शर्तों के उस जंजाल से मुक्त करने का प्रयास करेगी जो हमारी संवैधानिक और नीतिगत प्रतिबद्धताओं को घटाते हैं। एक जायज राजनीतिक आंदोलन और उन गैर-सरकारी संगठनों के शोरगुल के बीच भी हमें अंतर करना चाहिए, जो इस दरम्यान इसमें शामिल हो गये हैं। (अ कॉन्वीनिेंट कॉन्सेन्सस, फ्रंटलाइन, 4 जनवरी, 2002)। संसाधनों का जो अभाव है, उसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राथमिकताओं की पुनः समीक्षा करके तथा 1990 से शिक्षा नीति में पनपी अनेक विकृतियों को ठीक करके दूर किया जा सकता है। सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब नीति निर्धारण के दौरान राष्ट्रीय स्वायत्तता से कोई समझौता न किया जाए।◆

अनुवाद- राकेश पाण्डेय

### लिंग और शिक्षा

हाल की रिपोर्टों से पता चलता है कि शून्य से छः वर्ष के आयुवर्ग में लिंग अनुपात तेजी से घटा है यह कमी शिक्षित मध्यवर्ग में भी स्पष्ट है। ये तथ्य बताते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता को कितना कम महत्व दिया गया है। संयोगवश, ये रिपोर्ट इस भ्रम को भी तोड़ती हैं कि साक्षरता सामाजिक विकास- विशेषकर महिला सशक्तिकरण-का निर्णायक कारक है। अब यह स्पष्ट है कि ई. एफ. ए. की जौमतीन-डॉकार फ्रेमवर्क में साक्षरता और सामाजिक सूचकों (शिशु मृत्युदर, बाल मृत्युदर, जच्चा बच्चा संरक्षण दर, आदि) के मध्य संबंधों को लेकर जो बड़ चढ़कर दावा किया गया था, वह एक भ्रम था। आर्थिक स्तर और सामाजिक संकेतकों (गरीबी का सामाजिक सूचकों से नकारात्मक संबंध है) के मध्य सह-संबंध अधिक बड़ा सत्य है।

दुर्भाग्यवश, भारतीय नीति निर्माताओं ने अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दुष्प्रचार को आलोचनात्मक परीक्षण के बिना अपनाने की प्रवृत्ति दिखलाई है, और अनेक बड़े गैर सरकारी संगठन और अन्य प्रकार के प्रगतिशील सामाजिक आंदोलन भी इसके जाल में फंस गए हैं।

ब्राजीली शिक्षाविद् पॉलो फ्रेरेके अनुसार सजग कार्यान्वयन और सामाजिक गतिशीलता से जोड़े बिना साक्षरता बेमानी है। इसी तरह महिला शिक्षा व लैंगिक संवेदनशीलता के मुद्दे पर भारत में जो समझ विकसित हुई है उसका महत्व तभी होगा, जब उसे जेन्डर के बारे में सामाजिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक समझ के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये। किसी को भी जौमतीन-डॉकार फ्रेमवर्क और बाजारवादी विमर्श के बहाव में नहीं बह जाना चाहिए और इस आधारभूत महत्व के मुद्दे को सेक्स शिक्षा और जीवन की कुशलताओं के शिक्षण तक सीमित नहीं कर देना चाहिए।

अक्टूबर, 2001 में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निर्देशों के अनुसार केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड -सीबीएससी) ने इतिहास के पाठ्यपुस्तकों के कुछ भागों को हटाने का आदेश दिया। हटाये गये पाठों में से एक पाठ में अशोक (273 से 232 ई.पू.) महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कुछ अनावश्यक कर्मकाण्डों का उपहास करता बताया गया है और जिसका सीधा असर ब्राह्मणों की आय पर हुआ। इस पाठ में यह भी बताया गया है कि ब्राह्मणों में अशोक के प्रति एक वितृष्णा पैदा हो गई थी और वे एक ऐसी नीति चाहते थे जो उनके हित में हो और उनके विशेषाधिकार सुरक्षित रहें। सरकार नहीं चाहती कि छात्र यह जानें कि प्राचीन भारत में ब्राह्मणों ने किस प्रकार संस्कृति के नाम पर अंधविश्वासों को बढ़ावा देकर महिलाओं का शोषण किया और उन्होंने महिलाओं के संबंध में सम्राट अशोक की प्रगतिवादी राज्यनीतियों का विरोध किया। हमारी सरकार के नीति निर्माता इस बात से भयभीत हैं कि छात्रों को कहीं पितृ प्रधानता की सामाजिक सांस्कृतिक जड़ों का पता न चल जाए और शायद वे वर्तमान भारत में पितृ सत्तात्मक व्यवस्था का लागू करने पर सवाल उठा सकें।

नवम्बर, 2001 में एनसीईआरटी ने अपने अत्यधिक विवादित पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क को पाठ्यपुस्तकों में बदलने के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए निर्देश और पाठ्यक्रम जारी किए। माध्यमिक स्तर के लिए, कार्य-शिक्षा-प्रोग्राम ने दो घिसे-पिटे सेक्स शिक्षा पाठ्यक्रमों की सिफारिश की- एक, ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाली लड़कियों के लिए और दूसरा, नगरीय क्षेत्रों की लड़कियों के लिए। (माध्यमिक स्तर, पृष्ठ 95) एन. सी. ई. आर. टी. की उच्च प्राथमिक स्तर के लिए वोकेशनल गतिविधियों से पूर्व की गतिविधियों की समझ तो इससे भी गई बीती है जिसमें घर को साफ रखना, स्कूल और समुदाय के जलस्रोत की स्वच्छता, और छोटे भाई-बहनों की देखभाल में माता-पिता का सहयोग जैसी घिसी पिटी लिंगाधारित गतिविधियों को रखा गया है। (उच्च प्राथमिक स्तर - पेज 86-87) पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क में गहरे रूप से जड़ जमाए लैंगिक असमानता के दृष्टिकोण और शिक्षा नीति में लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के सायास कार्यक्रमों/गतिविधियों के अभाव में यह अनुमान करना आसान है कि इस प्रकार की लिंगाधारित प्री-वोकेशनल गतिविधियों का काम किन्हें सौंपा जाएगा। भाषा, पर्यावरण अध्ययन या प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रम में भी लैंगिक समानता के दृष्टिकोण का अभाव है। हाल-ही में प्रकाशित एनसीईआरटी पुस्तकों में लैंगिक भेदभाव की स्थिति और भी स्पष्ट है, जिनमें भारतीय इतिहास और समकालीन भारत के निर्माण में महिलाओं के योगदान को आंशिक रूप से ही दर्शाया गया है। ◆

अनिल सद्गोपाल